



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा  
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(१२)

**कलकत्ता**

**२-१-१९५४**

**आत्मार्थी...**

आशा है परम कृपालु उपकारी श्री गुरुदेव सुख-शांति में विराजते होंगे। 'निर्जरा अधिकार' व श्री 'मोक्षमार्ग प्रकाशक'का आठवाँ अध्याय बहुत सरस चल रहा होगा।

पत्र आपका मिला, समाचाचर निगाह किये... आप लोगों का विहार समय का प्रोग्राम जाना। जैसा अनुकूल योग होगा, गिरनार यात्रा आधि के समय का मेल मिलाने की चेष्टा करूँगा। परंतु अब योग होना कुछ कठिन-सा दिखाई पड़ता है।

आप लोगों को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ कि वहाँ के लिये मुझे कितनी उत्सुकता रहती है। महाराजश्री के विहार पहले उनके प्रवचन, साक्षात् दर्शन आदि का लाभ न होना हीन पुण्य का सूचक है।

समयपर वहाँ नहीं पहुँच सकने के विषय पर आपकी परेशानी जानी। आपके वाचक शब्दों से वाच्य भाव का अनुमान होता है। मोक्षार्थी अपने क्षणिक अल्पकालीन भावों का मूल्य नहीं आँकते।

सबों को यथायोग्य।

**धर्मस्नेही निहालचंद्र**



(१३)

**अजमेर**

**१७-१-१९५४**



**आत्मार्थी... धर्मस्नेह।**

आपका पत्र मिला। समाचार निगाह किये। इस समय सोनगढ़ का वातावरण विहार की अद्भुत उमंगों से भरा हुआ होगा। सर्वश्रेष्ठ नेता सहित मोक्षमण्डली स्थान-स्थान पर विजय का स्तंभ रोपने जा रही है, यह विचार हृदय को खूब उल्लसित करता है। दुर्भाग्यवश मुझे ऐसे अवसर पर वहाँ नहीं रहने का खेद है। आशा है गुरुदेवश्री का आत्मस्वास्थ्य व शारीरिक स्वास्थ्य निरंतर वृद्धिगत होंगे।

आपने व्यावसायिक, यहाँ की मेरी परिस्थिति बाबत पूछा सो इस विषय को आपको लिखने का विचार नहीं होता है। हमारी नींव तो मुक्तिरस के विचारों पर पड़ी है। दूसरे विचारों में आपको रस आवे, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। अभी कार्यवश पत्र बंध करता हूँ। आपका प्रोग्राम लिखते रहना। स्वस्थान को मुख्य रखकर ही परस्थानों के क्षणिक विकल्पों का सहज ज्ञान होता रहे, यह ही इच्छा है।

**धर्मस्नेही निहालचंद्र**

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५: अंक-२४१, वर्ष-२२, जनवरी-२०१८

आषाढ शुक्ल ५, गुरुवार, दि. २६-६-१९६६, योगसार पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन-१६, गाथा-४५

‘ज्ञानी ही शरीर मन्दिर में परमात्मा को देखता है।’ शरीररूपी आत्मा का मन्दिर, यह आत्मा वहाँ देखता है, किसी दूसरे मन्दिर में यह आत्मा नहीं दिखता। यहाँ ‘देखने’ से शुरु किया है। वह नहीं देखता था, ऐसा था। समझ में आया? नहीं देखता था, ऐसा है, इसमें देव है अब देखता है यहाँ-ऐसा कहते हैं।

तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोई भणेइ।  
देहा-देउलि जो मुइ, सो बहु को वि हवेइ।।४५।।

‘सब कोई कहते हैं कि तीर्थ में अथवा मन्दिर में जिनदेव है।’ अज्ञानी सब ऐसा कहते हैं कि भगवान वहाँ विराजते हैं। दूसरे आक्षेप करते हैं देखो! तुम्हारे में ऐसा लिखा है। अरे! सुन न अब, भाई! यह तो स्थापना निक्षेप को आत्मा वहाँ मान लेता है। उसे भावनिक्षेप माने वह तो भूल है, स्थापना में भाव भगवान है-ऐसा माने वह भूल है परन्तु उस स्थापना में यह आत्मा माने तो यह बड़ी भूल है-ऐसा कहते हैं, यहाँ तो यह बात है। समझ में आया? और स्थापना नहीं है-ऐसा माने तो भी वह मूढ़ जीव है। वस्तु नहीं कुछ? स्वयं को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक अशुभ से बचने के लिए, (ऐसा)

भाषा में व्यवहार (आता है)। वरना तो शुभभाव उस काल में उस प्रकार का होता है, उस प्रकार का, हाँ! भक्ति का, ऐसा। दया का राग हो, तब दया का; स्मरण का हो, तब स्मरण का; भक्ति का उस प्रकार का राग, उस काल में आता है, होता है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वहाँ तू आत्मा को देखना चाहेगा तो वहाँ आत्मा नहीं मिलेगा। समझ में आया? इसका वे तो वहाँ एकान्त मानकर आत्मा प्राप्त होगा, वहाँ से मुझे समकित होगा (ऐसा मानते हैं)। समकित तो स्वभाव सन्मुख होने से होता है, परसन्मुखता से तो व्यवहार समकित, (वहाँ) श्रद्धा का विषय पर है।

मुमुक्षु :- उसे व्यवहार समकित नहीं होता?

उत्तर :- बिल्कुल नहीं होता, इसके लिए तो यहाँ बात करते हैं। ऐसा देखे, ऐसा नहीं होता। फिर भी यह देखना है अवश्य; जहाँ तक पूर्ण अपने स्वरूप में स्थिर न हो, वहाँ तक ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता, व्यवहार को न माने (और) एकान्त, निश्चय माने तो वह मूढ़ है और उस व्यवहार द्वारा आत्मा को देखेगा-ऐसा माने तो भी मूढ़ है। कहो?

‘सब कोई कहते हैं कि तीर्थ में या

मन्दिर में जिनदेव है। जो कोई देहरूपी मन्दिर में जिनदेव को देखता है या मानता है, सो कोई ज्ञानी ही होता है।' ज्ञानी, कोई धर्मात्मा (देहरूपी) मन्दिर में आत्मा देखता है। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ है, उसे इस देहदेवालय में देखता है, वह ज्ञानी है। दूसरा अज्ञानी वहाँ भगवान देखता है, वह अज्ञानी है-ऐसा कहते हैं। व्यवहाररूप से जाने वह ज्ञानी है। व्यवहाररूप से जाने कि भक्ति है, शुभव्यवहार है, भगवान की स्थापना है, भगवान यहाँ साक्षात् विराजमान नहीं है। हमारे भगवान का मुझे उपकार वर्तता है, हमारे उपकारी का भाव प्रसिद्ध करने के लिए भगवान की मूर्ति की भक्ति है-ऐसा जाने तो वह अज्ञानी नहीं है, परन्तु उससे मेरा कल्याण, केवलज्ञान अन्दर हो जाएगा या समकित होगा-ऐसा वहाँ भगवान को माने तो वह मूढ़ अज्ञानी है-ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? कहो, भाई!

(संवत्) १९८२ में कहा था, एक भाई थे न! वे कैसे, या क्या नाम (था)? वढवाणवाले वैद्य, वैद्य थे? १९८२ में वढवाण में चातुर्मास था न? वढवाण.. फिर रात्रि में बैठे थे, पाँच, सात, दस व्यक्ति बैठे थे फिर कहा, देखो! भाई! ऐसी बात है। एक व्यक्ति ने (दूसरे के) पिता को सौ रुपये दिये। अब वह दिये (इसलिए) नाम में ऊपरी रूप से लिखा था। बहुत विस्तार नहीं, फिर



दोनों मर गये। तब (जिसने) सौ रुपये दिये (उसने कहा) मेरे पिता ने तेरे पिता को दस हजार रुपये दिये थे (उसने) सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ाये, सौ रुपये दिये थे फिर दो शून्य चढ़ाकर दस हजार (किये और कहा) तेरे पिता को मेरे पिताने दस हजार रुपये दिये थे, लाओ। दूसरा लड़का कहता है कि मैं बहियाँ देखूँगा। बहियों में देखा तो सौ निकलते हैं परन्तु यदि सौ स्वीकार करूँगा तो (सामनेवाला) दस हजार माँगता है (इसलिए उसने कहा) सौ भी नहीं (देना निकलता)। उसने दो शून्य

चढ़ाये, इसने निकाल डाले। ऐसा कहा था। इन श्वेताम्बरोंने भगवान के सिर पर इतने अधिक गहने (चढ़ाकर) शून्य चढ़ा दिये। स्थानकवासी के पास से माँगा तो उसने मूल में से निकाल दिया। ए..भाई!

(संवत्) १९८२ की बात है, ४० वर्ष हुए, रात्रि में उपाश्रय में बैठे थे। देखो! भाई! मूर्ति तो है, कहो क्या कहना है तुम्हारे? परन्तु मूर्ति चाहिए सादी। श्वेताम्बर थे। पता है, श्वेताम्बर थे बढवा जाते हुए आते थे। रात्रि में आये थे, वहाँ हमारे पास आये थे। देखो! मूर्ति है परन्तु मूर्ति में ऐसा नहीं होता, यह बढा डाला, बढाकर स्थानकवासी से माँगा तो वह कहते हैं, मूल में ही नहीं है। कहा, ऐसा बना है। बात सुनो, कहा। पाँच, सात व्यक्ति रात की चर्चा में थे, उस समय ऐसी कोई चर्चा नहीं थी। महाराज कुछ कहते होंगे, उसमें कुछ सन्देह का स्थान (नहीं

होता)। वे कुछ कहते होंगे-ऐसा कहकर निकाल देते परन्तु यह तुम्हारा झूठा कर देते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, 'जगत् में व्यवहार को ही सत्य माननेवाले बहुत हैं।' क्या? यह व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, देवालय, मन्दिर आदि परमात्मा ये ही मानो सत्य है, इस व्यवहार को ही सत्य माननेवाले बहुत जीव हैं। 'सब ऐसा ही कहते हैं कि घड़ा कुम्हारने बनाया...' देखो! यह जरा ठीक है, भाई! घड़े को कुम्हार ने बनाया (ऐसा अज्ञानी देखता है परन्तु) 'घड़ा मिट्टी से बना है...' पूरी दुनिया कहती है कि कुम्हार ने घड़ा बनाया, कुम्हार ने घड़ा बनाया... व्यवहार को सत्य मान लेते हैं। यह तो व्यवहार है, इसे सत्य मान लेते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान, तीर्थ और देवालय तो व्यवहार है, इनसे सत्य आत्मा मान ले, मूढ़ है-ऐसा कहते हैं। समझे न? 'घड़ा मिट्टी से बना है-ऐसा कोई नहीं कहता।' कहते हैं कोई? उसमें आता है या नहीं? तेरा (उपादान का) नाम भी कौन याद करता है? उस उपादान से (निमित्त) कहे-जहाँ हो वहाँ पूछे तो हमारी बात है। घड़ा कुम्हार ने किया, रोटी स्त्रीने की, पानी भर आये... यह घिसने का किया इस अमुक पत्थर द्वारा अच्छा सिल-बटना, सिल-बटना अर्थात् बारीक किया। यह सब बातें इस निमित्त से तो पूरी दुनिया बोलती है और तू उपादान की बात कहाँ पूछने जाता है? वह कहता है परन्तु उपादान भगवान के पास है, हाँ! सम्यग्ज्ञानी के पास उपादान का पूछें तो वे उपादान से कहेंगे।

यहाँ कहते हैं वास्तव में घड़े में मिट्टी का आकार है। क्या कहते हैं? घड़े में मिट्टी का आकार आया है। कुम्हार में आकार आया है? शकल समझे

न? आकार... उसकी आकृति... मिट्टी में कुम्हार की आकृति आयी है? या मिट्टी आयी है? 'मिट्टी का ढेर ही घड़ेरूप हुआ है।' मिट्टी का जो ढेर था, वह घड़ेरूप हुआ है या कुम्हार घड़े के रूप में हुआ है? 'कुम्हार के योग और उपयोग मात्र निमित्त है, इसी प्रकार तीर्थस्वरूप जिन प्रतिमाएँ केवल निमित्त है, उनके द्वारा अपना शुद्ध आत्मा जैसा परमात्मा, अरिहन्त और सिद्ध का स्मरण हो जाता है।' इतना... परमात्मा ऐसे आत्मा थे, ऐसा स्मरण का एक निमित्त है।

'वास्तव में वह क्षेत्र प्रतिमा, मन्दिर सब अचेतन जड़ हैं तो भी चेतन का स्मरण कराने के लिए निमित्त है।' अर्थात् स्मरण करे तो निमित्त कहलाते हैं। वही उनका स्मरण, हाँ! परमात्मा भगवान का नहीं। 'इसलिए उनकी भक्ति द्वारा परमात्मा की भक्ति की जाती है।' उनकी भक्ति द्वारा अर्थात् परमात्मा सर्वज्ञ की, हाँ! 'मिथ्यादृष्टि जीव विचार नहीं करता कि वास्तविक बात क्या है? वह मन्दिर और मूर्ति को ही देव मानकर पूजता है, इस कारण आगे विचार नहीं करता कि प्रतिमा तो अरहन्त और सिद्ध पद के ध्यानमय भाव का चित्र है, वह भाव की स्थापना है।' किसके भाव की? भगवान के भाव की। 'वह साक्षात् देव नहीं है।' वह साक्षात् देव भी नहीं तो यह आत्मा देव, वहाँ कहाँ से आया? कहो, समझ में आया?

फिर इन्होंने जरा ऐसा लिया है, भक्त कहीं पत्थर के गुण नहीं गाते। भगवान भावनक्षेप से कौन है? उनके वहाँ गुण गाते हैं। मूर्ति को देखकर (कहते हैं) भगवान तुम ऐसे हो, ऐसे हो, ऐसे हो। लो, समझ में आया?

**'सम्यग्दृष्टि सदा जानता है और अनुभव**

करता है कि जब मैं मेरे अन्दर शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से देखता हूँ तो मुझे मेरा आत्मा ही परमात्मा जिनदेव दिखता है। अपना परमात्मा देखने में तो अन्तरदृष्टि करे तो देखे तो जिनदेव तो यहाँ है। राग को जीतनेवाला वीतराग होनेवाला तो भगवान आत्मा स्वयं है। जिनदेव तो आत्मा है। यह जिनदेव पर मैं नहीं रहता। कहो, समझ में आया? **‘मुझे मेरे अन्दर मुझे मेरे द्वारा ही देखना चाहिए। यही आत्मदर्शन निर्वाण का उपाय है।’** आत्मा का दर्शन निर्वाण का उपाय है। कहीं भगवान का दर्शन निर्वाण का उपाय नहीं है... बाहर की भक्ति, निर्वाण का उपाय नहीं है।

दृष्टान्त दिया है **‘सिंह की मूर्ति को साक्षात् सिंह मानकर पूजा करे कि यह सिंह मुझे खा जाएगा तो उसे अज्ञानी ही कहते हैं।’** सिंह खा जाएगा? ऐसे भगवान तिरा देंगे? ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई! सिंह देखकर खा जाएगा—ऐसा माने तो मूढ़ है, वह तो स्थापना है। इसी प्रकार यह भगवान मुझे तार देंगे अन्दर का भाव, वह मूढ़ है। वहाँ कहाँ तेरा भाव था? सुनते हैं न इतने वर्ष से? ३१ वर्ष हुए हैं? इसका पक्का हृदय कठिन है। कहो, समझ में आया? **‘ज्ञानी जानता है कि सिंह की मूर्ति का आकार उसकी क्रूरता और भयंकरता बताने के लिए एकमात्र साधन है...’** सिंह के स्वरूप को दिखाने के लिए एक निमित्त है। उस सिंह का स्वरूप, हाँ! **‘वह साक्षात् सिंह नहीं है, इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।’** साक्षात् सिंह का लाभ नहीं है। **‘सिंह का स्वरूप बताने के लिए सिंह की मूर्ति परम सहायक है।’** निमित्त है। **‘जो शिष्य सिंह के आकार और उसकी भयंकरता से अनजान है, उसे सिंह का ज्ञान**

कराने के लिए सिंह की मूर्ति प्रयोजनवान है।’ यह निमित्त है। **‘इसी प्रकार जब तक स्वयं के अन्दर परमात्मा का दर्शन न हो, तब तक यह जिनमूर्ति परमात्मा का दर्शन कराने के लिए निमित्तकारण है।’**

यह (सिंह) सब का जाएगा... ऐसे यह मुझे तिरा देंगे... वे कहते हैं न? गाय कहीं दूध देगी? सिंह कुछ मारेगा? गाय कहाँ है वहाँ? वह तो स्थापना है। समझ में आया? स्थानकवासी यह दृष्टान्त देते हैं। गाय कुछ दूध नहीं देती, सिंह कुछ नहीं मारता और भगवान कुछ तिरा नहीं देते। तीनों देते हैं, तीन बात कहते हैं। कौन कहता है कि यह गाय सच्ची है और कौन कहता है कि वहाँ भगवान सच्चे हैं, वह तो निमित्त हुआ। उन भगवान का आत्मा कैसा? यह जानने का निमित्त हुआ और फिर ऐसा ही आत्मा मैं हूँ—ऐसा अन्तर्मुख देखे तो होता है। समझ में आया? **‘वाद-विवाद करे सो अन्धा’** हैं?

मुमुक्षु :- कैसे देखना यह सिखलाते हैं?

उत्तर :- आत्मा कैसे देखना ऐसा सीखता है। कहो, समझ में आया? **‘मूर्ति को मूर्ति मानना, परमात्मा नहीं मानना, यही यथार्थ ज्ञान है। जो व्यवहार में मग्न रहता है, वह मूल तत्त्व को नहीं पहचानता।’** है न? उस व्यवहार में वहीं का वहीं मग्न रहे तो वह आत्मा को नहीं देखता। यह भगवान तिरा देंगे... शाम, सबेरे, दोपहर तीन-तीन घण्टे वहीं का वहीं भगवान के पास (बैठा रहे), जय भगवान, जय भगवान (करे)। वहाँ नहीं, यहाँ अन्दर देख। समझ में आया? व्यवहार से निश्चय प्राप्त नहीं होता—ऐसा कहते हैं। तथापि व्यवहार है अवश्य। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु :- यह योगसार कभी पढ़ा नहीं।  
उत्तर :- नहीं, कभी पढ़ा नहीं, पहली बार पढ़ा जाता है।

‘व्यवहार वास्तव में अभूतार्थ और असत्यार्थ है। जैसा मूल पदार्थ है, वैसा उसे नहीं कहता।’ इस ओर है, भाई! १८५ में। व्यवहार तो वास्तव में असत्यार्थ है। वहाँ भगवान है आत्मा? वह तो असत्यार्थ है आत्मा, यह आत्मा स्वयं सत्यार्थ यहाँ है, समझ में आया? दृष्टान्त अभी दिया है। ‘व्यवहार में जीव नारकी, पशु, मनुष्य, देव कहलाता है। निश्चय से ऐसा कहना असत्यार्थ है।’ आत्मा नारकी, मनुष्य, पशु है? वह तो व्यवहार से बतलाया। वास्तव में तो झूठा है। ‘आत्मा न तो नारकी है न पशु है न मनुष्य है न देव है। शरीर के संयोग से व्यवहारनय से आत्मा के भेद व्यवहार चलाने के लिए किये गये हैं।’ व्यवहारनय के... व्यवहारनय के व्यवहार चलाने के लिए भेद किये गये हैं, निश्चय के लिए नहीं।

‘जैसे तलवार लोहे की होती है। सोने की म्यान में तो सोने की तलवार, चाँदी की म्यान में चाँदी की तलवार, पीतल की म्यान में पीतल की तलवार कहलाती है- यह कहना सत्य नहीं है।’ सत्य है? यह तो निमित्त से बात है। ‘सब तलवारें एक ही हैं। उनमें भेद करतने के लिए सोना, चाँदी व पीतल की तलवार ऐसा कहना पड़ता है।’ ऐसा सब बहुत लम्बी बात है।

‘परमात्मादेव को ही आप देखता है।’ लो! ‘इसी तरह जो अपने देहरूपी मन्दिर में विराजमान परमात्मादेव को ही आप देखता है, आपको मनुष्यरूप नहीं देखता।’ अपने को

मनुष्यरूप तो नहीं देखता परन्तु परस्वरूप जो परमात्मा, उसरूप आत्मा नहीं देखता। अपने स्वरूप से अखण्ड ज्ञायकमूर्ति है-ऐसा देखता है, उसे सच्चा ज्ञान और सत्य ज्ञान कहा जाता है। लो!

पुरुषार्थसिद्धियुपाय में यह दृष्टान्त दिया है न? ‘निश्चयनय यथार्थ वस्तु को कहता है। व्यवहारनय वस्तु को यथार्थ नहीं कहता।’ देखो, निश्चयनय वास्तविक तत्त्व का सत्यस्वरूप कहता है, व्यवहारनय उस सत्यस्वरूप (को नहीं कहता) वह तो उपचार से कथन करता है। ‘सर्वज्ञदेव निश्चय को भूतार्थ और व्यवहार को अभूतार्थ कहते हैं।’ सर्वज्ञ परमेश्वर व्यवहार को असत्यार्थ और निश्चय को सत्यार्थ कहते हैं। ‘बहुधा सर्व ही संसारी जीव इस भूतार्थ निश्चय के ज्ञान से दूर हैं।’ भगवान आत्मा स्वस्वरूप से प्राप्त होता है, ऐसे निश्चय ज्ञान से बहुधा प्राणी दूर हैं। बहुभाग व्यवहार को निमित्त को लगा है। भगवान आत्मा...! व्यवहार, निमित्त है अवश्य, बहुभाग उसी में लगा है कि इससे निश्चय (प्राप्त होगा)। असत्य से सत्य प्राप्त होगा। आत्मा के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से वह सब इसमें नहीं है, इसलिए असत्य है। व्यवहार है, वह उपचार है। लोग-बहुत जीव वहाँ लगे हुए हैं। भूतार्थ भगवान आत्मा अन्दर में अखण्डानन्द प्रभु को देखने का निश्चय का ज्ञान करनेवाले थोड़े हैं। समझ में आया?

‘जिस बालक ने सिंह नहीं जाना है, वह बिलाव को ही सिंह जान लेता है,...’ बिल्ली... बिल्ली... ‘क्योंकि बिलाव देखकर उसे सिंह कहा गया था, उसी तरह जो निश्चयतत्त्व को नहीं जानता है, वह व्यवहार ही को निश्चय मान लेता है।’ लो! निश्चय समझे बिना व्यवहार को निश्चय मान ले वह तो मूढ़ है। दो

तत्त्व अलग प्रकार के हैं। व्यवहार, वह उपचार और व्यवहार है और यह तो निश्चय और यथार्थ है। **‘व्यवहार ही को निश्चय मान लेता है। वह कभी भी सत्य को नहीं पाता है।’** लो! समझ में आया? इतनी गाथायें तो मन्दिर की हुई। ४२ से शुरू हुई थी न? हैं? ४२ से यहाँ तक कहा। ४१ में दूसरा था न? ४१ में कुतीर्थ का था... ४१ में कुतीर्थ में भ्रमने से मुक्ति होती है- ऐसा मानता है और यह अपना भगवान सत्य है, वहाँ जाने से मुक्ति होती है-ऐसा मानता है। समझ में आया?

अज्ञानी, इस गंगा नदी में नहाना और इसमें स्नान करना और इसमें यह करना, तीर्थ में भ्रमना और भटकना... जो वास्तविक व्यवहार तीर्थ भी सत्य नहीं है-ऐसे तीर्थ में भ्रमने से आत्मा का कल्याण होगा-ऐसा माननेवाला मूर्ख है। ऐसा कहा। फिर यहाँ कहा कि व्यवहार तीर्थ देव, देवालय,

मन्दिर आदि जैन शासन में है, गिरनार की यात्रा इत्यादि इनसे निश्चय प्राप्त होगा ऐसा कहनेवाले अपने अन्दर में भूले हैं। कहो, इसमें समझ में आया? आहाहा..! यह वहाँ कहाँ भगवान थे? गिरनार में नेमिनाथ भगवान हैं? नेमिनाथ भगवान तो मोक्ष पधारे हैं। वहाँ नेमिनाथ भगवान को देखने जाये तो मूर्ख है। यह तो उनकी स्थापना है। उनके स्मरण में ऐसे ‘नेमिनाथ’ भगवान थे, ऐसे थे। ओ..हो..! वासुदेव और बलदेव, भगवान नेमिनाथ जब विराजमान थे, तब वन्दन करने आते थे। साक्षात् भगवान विराजते। बलदेव-वासुदेव जिनके भक्त थे- ऐसा स्मरण में निमित्त है, शुभभाव है, भक्ति का भाव तो मुनियों को भी होता है। मुनियों को होता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव वन्दन करने गये थे या नहीं? गये थे, होता है, परन्तु कोई ऐसा मान ले कि वहाँ से-ऐसे से ऐसा अन्दर में जाया जाएगा और मुक्ति होगी, इस बात में सार नहीं है।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## नवीन प्रकाशन

### अध्यात्म सुधा भाग-१०

पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका पुस्तक ‘अध्यात्म सुधा भाग-१०’ पूज्य भाईश्रीकी ८५वीं जन्म जयंति प्रसंग पर प्रकाशित किया गया है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्याय अर्थ मंगवाना हो वे ट्रस्टके कार्यालयमें संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

### अध्यात्म सुधा भाग-११-१२

पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका पुस्तक ‘अध्यात्म सुधा भाग-११ एवं १२’ पूज्य बहिनश्रीकी आगामी सम्यक्त्व जयंति महोत्सव दिनांक ११-३-२०१८के दिन प्रकाशित करनेकी भावना है।

**संपर्क :- वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-३६४००१**





पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार  
ग्रंथके ९२७ वचनामृत पर भाववाही  
प्रवचन, दि. २६-५-१९८५, प्रवचन  
क्रमांक-५४९ (विषय : विधि)

जीव क्या व अजीव क्या?—यह तो न जाने, तथा शरीरके रोगोंको दूर करने अथवा धनोपार्जन आदि उपायोंसे अपने दुःख दूर करना चाहे, तो ये उपाय तो जूठे हैं। दुःख तो जीवमें है और वह मोहके कारण है, अतः उस दुःखका जीवमें यथार्थ भान कर मोहका नाश करना ही दुःख दूर करनेका उपया है। ९२७.

पृष्ठ १८५, ९२७. 'जीव क्या अजीव क्या?—यह तो न जाने, तथा शरीरके रोगोंको दूर करने अथवा धनोपार्जन आदि उपायोंसे अपने दुःख दूर करना चाहे, तो ये उपाय तो जूठे हैं।' मोक्षमार्ग प्रकाशकके चौथे अधिकारमें टोडरमलजीने यह विषय लिया है। सुख प्राप्तिका और दुःख टालनेका जूठा उपाय क्या है और सच्चा उपाय क्या है? प्रयोजनका प्रकरण शुरू किया है। जीवको प्रयोजनभूत तत्त्वोंका निर्णय करना चाहिये। उसमें भी मूल प्रयोजन तो सुख-दुःखका है।

यदि आत्मिक सुख, आत्माकी सच्ची शान्ति चाहिये, किसी भी हालतमें, किसी भी परिस्थितिमें, तो उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और प्रयोजनभूत तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय करना चाहिये। वह मूल प्रयोजन जो सुख-शान्तिका है, उस अनुसार बात है। उस प्रकरणका विस्तार करते हुए और उसकी चर्चा करते हुए प्रतिपक्षकी बात यहाँ टोडरमलजीने चर्ची है।

जगतके जीव दुःख टालना तो चाहते हैं। जगतके जीव दुःखका अनुभव कर रहे हैं, निरंतर दुःखका अनुभव कर रहे हैं, आकुलतामें परिणामते हैं। दुःख

यानी आकुलता। दुःख यानी प्रतिकूलता ऐसा नहीं।

सामान्यरूपसे ऐसा ख्याल है कि प्रतिकूलता सो दुःख। परन्तु प्रतिकूलता वह निश्चित की गयी वस्तु नहीं है कि किसे प्रतिकूलता कहनी। एककी अनुकूलता, वह दूसरेकी प्रतिकूलता होती है। इसलिये वह कोई निश्चित की गयी वस्तु नहीं है। परन्तु आकुलता सो दुःख है, यह सर्वसामान्यको सबको लागू पड़ता है। अतः आकुलतामें जगतके जीव जी रहे हैं, वे दुःख टालना तो चाहते हैं, परन्तु दुःख टालनेका सच्चा उपाय ज्ञात नहीं होनेसे जूठा उपाय करते हैं। ऐसा कहना है। उस जूठे उपायमें क्या करते हैं? कि शरीरमें रोग हो तो रोग मिटाऊँ। शायद ही किसीका शरीर संपूर्ण निरोगी होता है, शायद ही। कुछ न कुछ छोटी-बड़ी शारीरिक अवस्थाकी किसी न किसी प्रकारकी तकलीफ करीब-करीब देखनेमें आती है। तो वह शरीरका रोग दूर हो तो मुझे सुख हो, ऐसा माना है। निर्धनता कम हो अथवा तो जो कुछ आर्थिक परिस्थिति है, उसमें ज्यादा पैसे मिले तो सुख हो, ऐसा करके वह दुःख मिटाना चाहते हैं। सर्व ज्ञानी कहते हैं कि वह दुःख मिटानेका



उपाय जूठा है, सच्चा नहीं है। संपूर्ण तंदुरस्त हैं ऐसे जो देवलोकके देव; वहाँ तो उसे पूर्व कर्म ही शातावेदनीयका है, अशातावेदनीयका वहाँ उदय नहीं है। वेदनीय कर्मका जो उदय है, उसमें देवलोकमें सिर्फ शाताका उदय है और नर्कमें सिर्फ अशाताका उदय है। तिर्यचमें शाता-अशाता दोनोंका उदय है। तिर्यच, मनुष्य दोनोंमें। वहाँ संपूर्ण तंदुरस्त अवस्था शरीरकी होने पर भी; बाल्यावस्था नहीं है, वृद्धावस्था नहीं है, इसलिये बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्थाके अथवा शारीरिक दुःख, वेदनीयके दुःख वहाँ नहीं है। तो भी वहाँ आकुलता बहुत है। देव भी दुःखी हैं। वहाँ समृद्धि बहुत है। यद्यपि यहाँ भी जिसके पास पैसे बहुत है वे सब सुखी हैं ऐसा दिखाई नहीं देता है। वे भी दुःखी दिखाई देते हैं। उपाधिसे ग्रस्त हैं। आकुलतासे घिरे हैं। वह सब दुःखी है।

तो कहते हैं कि उसका जो उपाय है वह जूठा है। और उस जूठे उपायमें मूल भूल क्या है? वह बात पहले की है कि 'जीव क्या...' स्वयं जीव क्या? स्वयं जीव कैसा है? और शरीरादि-से लेकरके समस्त प्रकारके संयोगरूप सामग्री है वह अजीव पदार्थ कैसे हैं? और दोनोंका अपना-अपना स्थान कैसा है? उसे तो जाननेकी वह दरकार करता नहीं। वह जाननेकी ओर उसका लक्ष्य नहीं है और वह जाननेसे ये दुःख टलना और सुख प्राप्तिका प्रयोजन सिद्ध होगा, वह भी उसे मालूम नहीं है। इसलिये उसे वह जानता नहीं है और बाहरमें जगतमें प्रसिद्ध जो दुःख मिटानेके उपाय हैं, ऐसे उपाय करता है। जो लोगोंने माने हैं, मानकर स्वीकृत किये हैं।

यहाँ कहते हैं कि वह बदलना पड़े ऐसा है। वह स्वीकृत निर्णयोंको यहाँ बदलने पड़े ऐसा है। रोग मिटे तो सुख हो, पैसे प्राप्त हो तो सुख हो, ऐसी जो मान्यता है उस मान्यताको बदलना पड़े ऐसा है। भले समस्त विश्व ऐसा मानता हो तो भी। बहुत

लोग मानते हैं इसलिये उस अनुसार ही सब हो, ऐसा यदि हो तो मृत्युको कोई स्वीकृत नहीं करता। कोई ऐसा इच्छता है कि भले मृत्यु हो? मृत्यु होना किसीको सम्मत नहीं है।

जगतकी कोई सर्वमान्य व्यक्ति हो कि यह मनुष्य तो जगतका भला करनेको ही जीया और समस्त मानवजातिके लिये उसने सदाके लिये शुभेच्छा और अच्छी बातें ही कही हैं और ऐसी ही प्रवृत्तिमें वह रहा है। तो उसकी मृत्यु, समस्त विश्व चाहे नहीं तो न हो ऐसा बनता है? इसलिये जगत मानता है ऐसे सब हो, सब माने ऐसा हो, इस तरह भी कुदरत बन्धी नहीं है। क्योंकि वह कुदरती व्यवस्था है। कुदरत तो कुदरतके नियम अनुसार बन्धी है। उस कुदरतके पास अनैसर्गिक कार्य करवाना कोई भी चाहे, एक चाहे या अनेक चाहे या सब चाहे, तो भी वह चले ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- कुदरत माने?

पूज्य भाईश्री :- कुदरत अर्थात् वस्तुका स्वभाव। 'वत्थुसहावो धम्मो'। कुदरत कहो या धर्म कहो। वस्तुका जो स्वभाव है, इसलिये तो पहला कहा कि 'जीव क्या' यानी जीवका स्वभाव क्या? उसके गुणधर्म क्या? अजीव अर्थात् अजीवका स्वभाव क्या? उसके गुणधर्म क्या? वह जाने बिना अनैसर्गिकरूपसे कोई कार्यसिद्धि करना चाहे तो हो, वह होने योग्य नहीं है। नहीं बनेगा और तुझे उसका आग्रह रहेगा तो आकुलता होगी, फिर भी परन्तु उस आग्रहसे कोई कार्य होगा, ऐसा तो बनेगा नहीं।

इस सत्यको स्वीकृत किये बिना कभी निवेडा नहीं है। आज स्वीकारे, कल स्वीकारे या अनन्त कालके बाद स्वीकारे, परन्तु सत्यको तो स्वीकृत किये बिना जीवका छूटकारा नहीं है। अर्थात् दुःखमें-से नहीं छूटेगा, उसका निवेडा दुःखमें-से छूटनेका नहीं है, उतनी बात है।

**‘दुःख तो जीवमें है और वह मोहके कारण है,...**’ दुःख है वह जीवमें है, परन्तु जीवकी अवस्थामें है। जीवमें है परन्तु जीवकी पर्यायमें अथवा अवस्थामें है, मूल स्वरूपमें नहीं है। मूल स्वरूप तो सुखस्वरूप है कि जिसमें दुःखकी गन्ध भी नहीं है। **‘दुःख तो जीवमें है और वह मोहके कारण है,...**’ मोह अर्थात् यहाँ दर्शनमोह, भ्रमणा।

दुःखका मूल कारण जीव और अजीव पदार्थ सम्बन्धित उसकी भ्रमणा है। वह उसे दुःखका कारण है। अथवा अनन्त सुखस्वरूप ऐसा जो स्वयं आत्मा, उसकी अभानतामें-अचेततामें, उसे भूलकर कहीं औरसे सुख प्राप्त करनेके लिये हो रही आकुलता, ऐसा जो दर्शनमोह वह दुःखका मूल कारण है।

मोह दुःखका कारण है माने क्या? मोह अर्थात् अन्य पदार्थमें-से सुख प्राप्त करनेकी वृत्ति, उसका नाम मोह है। परन्तु इस जीवका सुख कोई अन्य पदार्थमें-से आये, हो, वह कुदरतकी व्यवस्थामें नहीं है अथवा वह सत्यसे विरुद्ध है। सत्य परिस्थितिसे वह विरुद्ध है। बालूममें तेल नहीं है। तिलमें तेल है। परन्तु तिल जितनी ही छलनीमें छानी हुई रेत घानीमें डाले तो उसमें-से तेल नहीं निकलता। फिर भी उसमें-से तेल निकालनेका प्रयत्न करे तो उस प्रयत्न से आकुलता होगी, लेकिन उससे कोई तेल मिलता नहीं। वैसे इस जीवका सुख इस जीवमें भरा है।

जैसे कस्तूरी मृगकी नाभिमें कस्तूरी भरी है। गुरुदेव दृष्टान्त देते थे। और वह खुशबु आती है इसलिये उसे ऐसा भ्रम होता है-मोह होता है कि कहीं बाहरसे खुशबु आ रही है। इसलिये वह खुशबुको खोजता है। कहाँ-से खुशबु आ रही है? कहाँ-से खुशबु आ रही है? परन्तु उसे मालूम नहीं है कि खुशबु तेरे-से आ रही है। तो वह बाहर खोजता है।

वैसे सुख स्वयंमें भरा होने पर भी और कितना सुख भरा है? स्पष्टरूपसे अनन्त सुख भरा है कि

जिस सुखको समुद्रकी उपमा कम पड़ती है। समुद्रका तल है, इस सुखको तल नहीं है। इतना सुख अन्दर है। और इसलिये वह सुखस्वभावी होनेसे सदा सुख इच्छता है। कोई जीव कभी भी एक क्षणके लिये भी, एक समयके लिये भी और किञ्चित्मात्र भी कमसे कम दुःख भोगनेको वह तैयार नहीं है। वह उसके अभिप्राय विरुद्ध बात है। क्योंकि उसका स्वभाव नित्य परिपूर्ण सुखरूप उसका स्वभाव है। लेकिन वह सुख अपनेमें-से कैसे प्राप्त करना, अनुभव करना उसकी उसे समझ नहीं होने-से, उसका ज्ञान नहीं होने-से और उसकी विधि नहीं आती होनेसे, फिर उसके मान्य किये हुये उपाय करता है, जिसे यहाँ जूठे उपाय कहनेमें आया है। वह उपाय सच्चे नहीं है।

**‘वे उपाय तो जूठे हैं। दुःख तो जीवमें है और वह मोहके कारण है, अतः उस दुःखका जीवमें यथार्थ भान कर मोहका नाश करना ही दुःख दूर करनेका उपाय है।’** क्या कहते हैं? यदि मोहसे दुःख है तो मोहको दूर करना वह दुःख दूर करनेका उपाय है। अथवा पदार्थका यथार्थ स्वरूपसे यथार्थ ज्ञान करना कि जो ज्ञान करने-से मोह रहता नहीं। जो ज्ञान करने-से पदार्थ विकृतस्वरूप दिखता नहीं, अच्छा-बुरा दिखता है वह देखनेवालेकी विकृति है। पदार्थ तो जो है वह है।

एक आदमीको एक रंग अच्छा लगता है और वही रंग दूसरे आदमीको अच्छा नहीं लगता। हजारों रंग हैं। सबको सब अच्छे लगते हैं ऐसा नहीं है। अरे..! एक ही रंग एक आदमीको एक बार अच्छा लगता है और दूसरी बार अच्छा नहीं लगता। ऐसा बनता है कि नहीं? इसलिये वह दृष्टिभ्रमका विषय है। वह कोई पदार्थका यथार्थ स्वरूप... अच्छा लगना, नहीं लगना, वह पदार्थको यथार्थ स्वरूपसे देखनेकी बात नहीं है। वह दृष्टि जूठी है, वह देखना जूठा है। वह पदार्थका सच्चा ज्ञान करके, यथार्थ भान करके

‘जीवमें यथार्थ भानकर,..’ जीवकी अवस्थामें जो जूठा ज्ञान है, उस कारणसे भान जूठा है। भानमें क्या जूठा है? कि मैं मनुष्य हूँ, ऐसा उसे भान है। इसलिये देह और आत्मा एक ऐसा जो पूतला है, वैसा मैं। ऐसा उसने स्वीकार किया है। लेकिन उसमें दो तत्त्व हैं। एक जीवतत्त्व है और एक अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्वमें जीवतत्त्व नहीं है और जीवतत्त्वमें अजीवतत्त्व नहीं है। तात्त्विक ज्ञान तो यह है। भले संयोग है।

दूधमें पानी डाले तो पानी दूध नहीं होता। यदि पानी दूध बन जाय तो कितना डालना उसका कोई नाप रहे नहीं। परन्तु दूध दूध रहता है और पानी पानी रहता है। दो तत्त्व एक नहीं हो जाते। अजीवमें फेरफार होनेपर जीवको कुछ होता है ऐसा नहीं है। और जीवकी अवस्थामें (फेरफार) होनेसे अजीवको कुछ होता है, ऐसा नहीं है। दोनों अपने-अपने गुणधर्म अनुसार परिणामते हैं, स्वतंत्ररूपसे। दोनोंका अस्तित्व स्वतंत्र हैं और दोनोंका परिणामन स्वतंत्र है। यदि दोनोंका परिणामन स्वतंत्र न हो तो देहकी सब अवस्था जीवकी इच्छानुसार, जीवकी इच्छाके आधीन होती। परन्तु ऐसा प्रत्यक्षरूपसे देखनेमें नहीं आता।

एक बालक जल्दी बड़ा हो जाय, ऐसी उसके माता-पिता इच्छा करे तो जल्दी बड़ा हो जाय? और वही पुत्र युवान होनेके बाद वृद्ध न हो, ऐसी इच्छा करे तो उसका वृद्ध होना रुक जाता है? वह ये सूचित करता है कि उसके सब परमाणु जीवके इच्छाके बाहर-इच्छाको अधीन हुए बिना बिलकूल स्वतंत्ररूपसे परिणामते हैं, जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यंत। तो दोनोंका स्वतंत्र भिन्न-भिन्न अस्तित्व स्वीकार करने पर कोई भी परपदार्थ, दूसरा पदार्थ मेरे अधीन नहीं है, इसलिये मेरी कल्पना अनुसार या मेरी इच्छा अनुसार, भाव अनुसार उसकी अवस्थान होनेका आग्रह उसे न रहे और उसकी आकुलता भी उसे न रहे।

यदि वह पदार्थकी स्वतंत्रता समझे तो। ये तो विज्ञान ही समझना है। और नहीं तो ऐसा हुए बिना रहेगा नहीं। अनादिसे विपरीत पकड़ तो है ही। वह विपरीत पकड़ ऐसी है कि एक परमाणु (भी) उसके अधिकारमें नहीं है, परन्तु अनन्त परमाणुको वह अपने अधिकारमें रखना चाहता है।

देह तो अनन्त परमाणुका पिण्ड है। उसके अतिरिक्त दूसरे संयोग है वह भी अनन्त परमाणुका पिण्ड है। उन सबको वह ठीक करना चाहता है, अपनी इच्छा अनुसार, लेकिन ऐसा तो बन नहीं सकता। और ऐसा बनता नहीं है, इसलिये किसीकी आकुलता और दुःख दूर नहीं होते।

जो समझता है उसकी आकुलता दूर होती है। और वह दुःख दूर होकर वह सुखी बन जाता है। जैसे अरिहन्त और सिद्ध परमात्माको अनन्त सुख प्रगट है। अनन्त चतुष्टयमें अनन्त सुख है कि नहीं? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख। उसमें एक अनन्त सुखकी बात है। वह अनन्त सुख उनको प्रगट हुआ क्योंकि उन्होंने जीव और अजीव पदार्थका यथार्थ स्वरूप जाना, माना और ऐसा जानने-माननेमें वे स्थिर रहे। जानना, मानना एक बात है, स्थिर रहना वह थोड़ी दूसरी बात है। परन्तु यथार्थ जाने, माने तो क्रमशः स्थिर हो। एकदम स्थिर न हो तो क्रमशः हो। परन्तु विपरीत जाने-माने उसे तो स्थिर होनेका कोई सवाल रहता नहीं। स्थिरता वह चारित्रकी पर्याय है।

अब, जीव और अजीव क्या? उसका विचार करे नहीं और चारित्र सुधारनेकी पूरा जगत बात करे। पूरा जगतमें ऐसा कहे कि हम तो आचरणमें मानते हैं। आचरण दिखे तो हम माने, अन्यथा (नहीं मानते)। लेकिन किसके आधारसे आचरण रहेगा उसकी नींवका तो ज्ञान है नहीं। इसलिये वह नींव बिना मकान बनानेकी बात है। ऐसा कभी बन सकता नहीं।

अतः यहाँ प्रयोजनके विषयमें प्रथम ही दर्शनमोह

मिटानेकी बात है। जिसे दर्शनमोहका नाश हो, उसे आत्माके सत्य स्वरूपका, मूल स्वरूपका ज्ञान और भान होता है और उसमें रहे सुखका भान होनेपर बाह्य पदार्थमें-से सुख प्राप्त करनेकी उसकी वृत्ति उपशांत हो-शांत हो। क्योंकि जिसे मालूम पड़ा कि यहाँ-से सुख नहीं मिलता है, उसे फिर वहाँ-से सुख प्राप्त करनेका अभिप्राय रहता नहीं। राग हो तो निषेध आता है कि ये राग अभी भी उत्पन्न होता है। सुख तो वहाँ नहीं है, फिर भी उत्पन्न होता है, तबतक उतना दुःख होगा। इस प्रकार वह सुखके और उत्पन्न होनेवाले दुःखके स्वरूपको यथार्थ जानता है। उसे दुःख मिटता है और सुख होता है।

बहुत लोग माने वह सत्य, ऐसा पहाड़ा यहाँ लागू नहीं पड़ता। जगतमें बहुत लोग मानते हैं, उस प्रकारसे सुख-दुःखका प्रकार नहीं है। पढे-लिखे बुद्धिमान लोगोंको पूछो कि सुखके विषयमें आप अंधश्रद्धालु हो कि नहीं? अंधश्रद्धामें नहीं माननेवाले; बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि हम धर्मके अंधश्रद्धालु नहीं हैं। हम तो सोचसमझकर कुछ दिखे कि यह बराबर है तो ही मानते हैं, ऐसे ही अंध अनुकरण हम नहीं करते। उसे ऐसा पूछे कि, सुख होता है और दुःख होता है, उस विषयमें जगतमें माने हुए जो प्रकार हैं, उसे अंधश्रद्धासे स्वीकृत किये हैं या उसके पीछे आपकी कोई वैज्ञानिक समझ है?

सुख है, वह कौन-से पदार्थमें है? किस पदार्थका वह धर्म है? और कौन-से पदार्थकी वह अवस्था है? ऐसा वैज्ञानिक तौर पर साबित किया हुआ आपने माना है? या जो सब पहलेसे मानते हैं उस अनुसार, आगेसे चली आती है, वह माना है? यदि लोग मानते हैं वैसे मान लिया हो तो वह अंधश्रद्धा नहीं है तो और क्या है? वह अंधश्रद्धा ही है।

समस्त विश्व संयोगमें सुख मानता है, संयोगकी अनुकूलताओंको सुख मानता है और समस्त विश्वकी

दौड़ भी संयोगके पीछे है। उसे पूछें कि तात्त्विक तौर पर ये तो हमें बताईये कि जिस पदार्थकी प्राप्तसे आप सुख मानते हो, उस पदार्थमें सुख है या नहीं? ऐसा साबित तो करो पहले। यदि सुख ही नहीं है तो फिर प्राप्ति सवाल नहीं रहता। हो तो भी प्राप्त हो या न हो, वह दूसरी बात है।

एक पदार्थमें-से दूसरे पदार्थमें उसका धर्म आ सके या न आ सके, वह अभी विचारनेका विषय बाकी रहता है। लेकिन अभी तो है ही नहीं। जिस जड़ पदार्थमें सुखका धर्म नहीं है, गुण नहीं है, पर्याय नहीं है, द्रव्य नहीं है, कुछ नहीं है उसमें-से सुख प्राप्त करनेकी बात है, वह कितनी अंधश्रद्धासे भरी है? कितनी अंधश्रद्धासे भरी है? कि पूर्णरूपसे सौ प्रतिशत अंधश्रद्धा है।

मुमुक्षु :- पैसेवाले सुख है।

पूज्य भाईश्री :- पैसेवाले सुखी है तो पैसेवालेको पूछना। यहाँ तो फिर भी इतने पैसेवाले नहीं है, परन्तु अमेरिका अभी धनाढ्य देश गिना जाता है। वहाँ सब Multi millionaires हैं। कैसे? Multi millionaires और Multi billionaires हैं। Million से Billion का आँकड़ा बड़ा है। उस बेचारेको कहीं सुख नहीं है। ना ही उसे नींद आती है। नींद आये तो भी नींद आनेके लिये या उसे मद्यपान करना पड़े या उसे नींदकी गोली खानी पड़े। ऐसा होता है। और ना ही उसे कुछ मुड रहता है। रातको नींद आती नहीं और दिनभर उसे काम करनेका मुड नहीं रहता। कोई मुड ही नहीं रहता, बेचैनी ही रहा करती है। तो उस पैसेमें-से उसे ये सब सुख क्यों नहीं मिलता होगा?

हमारे एक रिश्तेदार है वह बात करते थे कि इतना Automisation है कि Office से घर पर आये तो बंगलेके दरवाजे पर बैठे-बैठे गाड़ीमें-से बटन दबाये, मोटरमें बैठे-बैठे, तो दरवाजा खूल जाय। रात

हो गयी हो तो अंधेरा हो गया हो तो उजाला हो जाय। सब बत्ती चालू हो जाय। गाड़ीमें बैठे-बैठे ही सब बटन दबाना। गाड़ी रखनेका गराज खूल जाय, Automatic। दरवाजा खूल जाय, गराज खूल जाय, बत्तीयाँ हो जाय, परन्तु भाईसाहबको सुख नहीं होता। इसका क्या कारण है?

बुद्धिमान मनुष्यको इसका विचार करना चाहिये कि जिसमें सुख नहीं है, उसमेंसे सुख प्राप्त करनेका जो रस है,.. उसने उतना क्यों जमाया? कि सुख प्राप्त करनेके लिये। उतनी सार व्यवस्था क्यों की? कि सुखके लिये। ऐसा जो पुद्गल सम्बन्धित रस है, वह चैतन्यरससे विरुद्ध होनेसे, सुखरससे विरुद्ध होनेसे, सुखसे विपरीत ऐसे दुःखके परिणामको उत्पन्न करता है। दुःख दूसरा कुछ नहीं है, परन्तु निज सुख स्वभावसे विरुद्ध जाना उसका नाम दुःख है।

इसीलिये जब-जब इस जीवको दुःखका अनुभव होता हो, तब उसे यह विचार करना कि, मैं किस प्रकारसे अज्ञानपूर्ण पद्धतिसे मेरे सुखस्वभावसे विरुद्ध चलता हूँ कि जिससे मुझे दुःखका अनुभव होता है? सुखसे भरा ऐसा मैं पदार्थ, जीव नामक पदार्थ, दुःखका अनुभव करता हूँ, उसका कारण कि कोई अज्ञानसे मुझे स्वभावसे विरुद्ध जाना हो रहा है, इसलिये दुःख हो रहा है।

अब, पैसेवाले सुखी है या नहीं, यह नक्की करो। पैसेवाले क्या? देव है वह भी दुःखी है। ये मनुष्यमें तो मनुष्यको मर्यादित संपत्ति है। देवोंकी संपत्ति कितनी! इन्द्र है। इन्द्रासनको बत्तीस लाख विमानका राजा कहा जाता है। और एक विमानमें असंख्य देव हैं। कितने? हिन्दुस्तानकी तो सत्तर क्रोड़की आबादी या जितनी भी हो उतनी, तब तो ऐसा हो, Prime minister हो तब उसे ऐसा लगे कि मैं राजा बन गया। यद्यपि उसकी भी कुछ परतंत्रता है, उसकी मर्यादा है। परन्तु इसे तो बत्तीस लाख देश है। विमान कहो या उसके देश कहो। उसमें एक-एकके अन्दर असंख्य

देव हैं। संख्यासे पार जाना पड़े। इतने असंख्य देव हैं। उसका वह स्वामी कहलाता है, उसका राजा कहलाता है। उसे साहब-साह्यबा कहलाता है। उसे उससे सुख नहीं है। वहाँ सौधर्म इनद्र है वह सम्यग्दृष्टि है। वह जानता है कि इस पर लक्ष्य जाय उतना दुःख है। उपयोग जितना अस्थिर हो और संयोग पर जाता है उतना दुःख होता है ऐसा वह अनुभव करता है। अतः सुख और दुःख क्यों होता है, उतना उसे भान है इसलिये वह बच जाता है। और नहीं तो उसके भान रहित जो देव हैं, वे तीव्र पुद्गलरस के कारण एकेन्द्रियादिमें चले जाते हैं।

मिथ्यादृष्टि देवोंकी दुर्गति भी विशेष होती है। राजा, श्रीमंतोंकी भी दुर्गति विशेष होती है। क्योंकि उसे तीव्र रस है। संयोगका उसे तीव्र रस है। इसलिये मिथ्यात्वका दर्शनमोह सम्बन्धि बहुत बड़ा पाप वह प्रतिसमय बान्धता है। प्रतिसमय बान्धता है।

इसके बादवाले बोलमें वह बात लेंगे कि जगत जिसे पाप कहते हैं उसे पहचानता है और उसका तिरस्कार करते हैं। परन्तु वह सब पापका बाप है ऐसा जो मिथ्यादर्शन, उसे समझते नहीं, पहचानते नहीं, और उस सम्बन्धित दुर्लक्ष्य करके छोटे-छोटे पाप दूर करनेमें रुकते हैं। छोटे पाप उपेक्षा करके करने, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। छोटे-छोटे पापकी उपेक्षा करके वह करना, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। यहाँ तो एक रागके कणका भी निषेध है। यह सिद्धान्त है। परन्तु विधि ऐसी होनी चाहिये कि मूलमें-से रोगका नाश हो।

ये तो रोग है न? दोष तो रोग है। वह मूलमें-से नाश हो, वहाँ उसे शक्तिको लगाना चाहिये और वहाँ रुकना चाहिये। वहाँ रुक न सके, उस प्रकारसे छोटे-छोटे पापको मिटानेमें शक्ति रुके तो उससे तो नुकसान तो स्वयंको ही होगा। उसका नुकसान दूसरेको नहीं होगा, परन्तु उसका नुकसान स्वयंको ही होगा। वह ९२७ (बोल) पूरा हुआ।

### धार्मिक कार्यक्रम

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत्र सुदी ३, मंगलवार दि.२०-३-२०१८ से चैत्र सुदी ५, गुरुवार दि.२२-३-२०१८ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में प्रातः ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.२२-३-२०१८, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात् ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने की सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर, फोन : (०२७८) २५१५००५

### वैराग्य समाचार

भावनगर निवासी श्री हीरालालजी जैनकी धर्मपत्नी श्रीमती विमलादेवी जैनका दि.३-१२-२०१७ के दिन देहपरिवर्तन हुआ है। स्वर्गस्थ आत्मा देव-शास्त्र-गुरुके आश्रयसे आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावनाके साथ स्वानुभूतिप्रकाश परिवार उनके कुटुंबीजनों प्रति सांत्वना प्रेषित करता है।

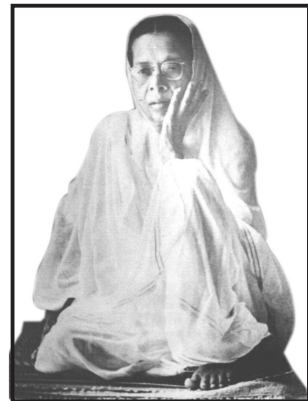
- स्वानुभूतिप्रकाश परिवार

एक जीव दूसरे किसी जीव के विषय में शोक करता हुआ कहता है कि अरेरे! मेरे नाथ का मरण हुआ। परन्तु वह अपने लिए शोक नहीं करता कि मैं स्वयं संसार समुद्र में डूबा हूँ। संसार में जीव जिस प्रकार दूसरे के विषय में विचार करता है उसी ही प्रकार स्वयं के लिए भी यदि विचा करे तो शीघ्र स्वयं का हित हो। परन्तु जीव अपने विषय में अधिकतर विचार नहीं करता।

(श्री कुंदकुंदाचार्य, मूलाचार, अनुप्रेक्षा-अधिकार, गाथा-११)



## पूज्य बहिनश्री की तत्वचर्चा



**प्रश्न :-** श्री 'नियमसार' शास्त्रके परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकारकी पहली पाँच गाथाओंमें प्रथम कहा है कि-नारक नहीं, तिर्यच नहीं, फिर कहा कि भेदज्ञानके अभ्याससे मध्यस्थ होकर चारित्र बनता है, तो क्या सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् भी भेदज्ञानको भाना चाहिये?

**समाधान :-** हाँ, सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् भी भेदज्ञानको भाना। भेदज्ञानके अभ्याससे माध्यस्थ होकर चारित्र बनता है। भेदज्ञानमें सम्यग्दर्शन होता है, उसीमें चारित्र भी होता है और उसमें केवलज्ञान भी होता है-सब उसीमें होता है। प्रथम भेदज्ञानके बलसे सम्यग्दर्शन और पश्चात् उसीके बलसे ही चारित्र होता है।-इसप्रकार सर्वत्र भेदज्ञान ही है। प्रारंभसे अंत तक भेदज्ञानके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। मार्ग तो सीधा और सरल है; परंतु अनादि अभ्यासके कारण वह महंगा हो गया है। मार्ग कोई उलटा-पुलटा नहीं है, बाह्यमें इतने कार्य करना ऐसा उसमें नहीं है, सब अंतरमें करनेका है। प्रारंभसे अंत तक एक ही मार्ग है। भेदज्ञानके अभ्याससे संवर, प्रत्याख्यानदि सब प्रगट होते हैं। अनादिकालीन एकत्वबुद्धिके कारण उसे भेदज्ञान प्रथम सहज नहीं होता, विचार आकर छूट जाते हैं। सहज परिणति नहीं है इसलिये भेदज्ञानको उपयोगमें लाये इतनेमें (वह) उपयोग छूट जाता है। इसप्रकार उपयोग बारंबार फिरता रहता है और उसे स्थिरता नहीं होती, श्रद्धाका बल उतना नहीं टिकता। परिणति सहज नहीं हुई है इसलिये उसे प्रथम भूमिका विकट लगती है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०४)



**प्रश्न :-** आत्मार्थी जिसे कि वास्तवमें आत्मार्थ प्रगट हुआ है वह निःशंकरूपसे निर्णय कर सकता है कि 'मुझे भव नहीं है'?

**समाधान :-** आत्मार्थी स्वयं निर्णय कर सकता है। सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्व भी अपनेको वैसी उष्मा (हौस) आये तो स्वयं निर्णय कर सकता है। कोई ऐसा पात्र जीव हो तो वह अपनी भावना तथा आत्मार्थिताके आधारसे यह निर्णय कर सकता है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०५)



**प्रश्न :-** ज्ञानी परिणमनकी अपेक्षासे विकारका कर्ता-भोक्ता है?

**समाधान :-** ज्ञानी परिणमनकी अपेक्षा कर्ता-भोक्ता है; परंतु उसको स्वामित्वबुद्धि नहीं है, इसलिये वह कर्ता-भोक्ता नहीं है ऐसा कहा है; तथापि अस्थिरतामें रागादि हैं।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०६)



**प्रश्न :-** किसी भी 'पर्यायकी योग्यता' लेनेमें प्रमाद आये ऐसा लगता है, तो 'पुरुषार्थकी त्रुटि' लना बराबर है?

**समाधान :-** (एकांतसे) योग्यता लेनेमें प्रमाद आ जाता है। 'जो होना होगा सो होगा', उसकी ऐसी योग्यता-ऐसे बचावकी ओरका पक्ष लेनेमें तो जीवको जरा भी देह नहीं लगती। कार्य न हो तो बचावका पक्ष एकदम आ जाता है। परंतु पुरुषार्थकी ओर जाय तो उसे खटक रहे कि-यह मुझे ही करना



है, मैं अपने प्रमादके कारण ही रुका हुआ हूँ; प्रमाद है इसीलिये आगे नहीं बढ़ पाता, इतनी लगनी नहीं लगी है इसलिये आगे नहीं बढ़ पाता, श्रीमद्जीने कहा है न? कि जीवको अटकनेके अनेक स्थान होते हैं; जीव चाहे जहाँ अटक जाता है।

मुमुक्षु :- मेरे प्रमादसे ऐसा हुआ है और मैं पुरुषार्थ नहीं कर सकता-ऐसा स्वीकारनेसे तो आकुलता बढ़ जाय ऐसा न बने?

बहिनश्री :- वह सब आत्मार्थीको देखना है। यदि आकुलता बढ़ जाय और विशेष उलझनमें पड़ जाय तब भी मार्ग नहीं मिलता। मार्गमें शांतिसे धैर्यपूर्वक आगे बढ़ा जाता है। मुझे प्रमाद है या शांति है या धैर्य है अथवा क्या है? वह सब स्वयं विचारना है। अकुलानेसे मार्ग नहीं मिलता; इसलिये शांति से तथा धैर्यपूर्वक स्वयं मार्ग निकाले। अपनी योग्यता कैसी है वह समझकर आगे बढ़ना। पुरुषार्थ नहीं चलता हो अथवा कहीं-कहीं अटकता हो वहाँ पुरुषार्थ करे और यदि उलझन रहती हो तो शांति रखना, धीरज रखना।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०७)



प्रश्न :- द्रव्य पर्यायमें नहीं आता वह किस प्रकार? समझानेकी कृपा करें।

समाधान :- द्रव्य पर्यायमें नहीं आता अर्थात् द्रव्य तो द्रव्यरूप रहता है। द्रव्यका स्वरूप शाश्वत-अनादि-अनंत है, जबकि पर्याय क्षणिक है, दूसरे ही क्षण पलट जाती है; इसलिये जैसी पर्याय प्रतिक्षण पलट रही है वैसा द्रव्यका स्वरूप नहीं है और इसी कारण द्रव्य पर्यायमें नहीं आता। द्रव्य प्रतिक्षण नहीं पलटता, वह तो एकसमान रहता है और पर्याय पलटती है इसलिये द्रव्य पर्यायमें नहीं आता। वैसे तो पर्याय है वह द्रव्यका स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर एक द्रव्यका स्वरूप है। द्रव्य अनादि-अनंत है और पर्याय पलटती रहती है; तथापि पर्याय द्रव्यके आश्रयसे ही होती है, द्रव्यमें ही होती है, कहीं आधार बिना नहीं होती। जो स्वभावपर्याय होती है वह द्रव्यके अवलंबनसे होती है। ज्ञान-आनंदादि अनंतगुणोंकी जो भी शुद्ध पर्याय होती हैं वे द्रव्यके आश्रयसे होती हैं और जो विभावपर्यायें होती हैं वे अपने पुरुषार्थकी मंदतासे होती हैं। वे विभावपर्यायें अपना स्वभाव नहीं है इसलिये उनके और अपने-दोनोंके भावभेद है, अपना (स्वभाव निराकुलतास्वरूप), और विभावभाव (आकुलतास्वरूप) होनेसे दोनोंके स्वभाव जुदे हैं, दोनोंके भावभेद हैं, अतः विभावसे भेदज्ञान करना कि-विभावभाव आकुलतामय हैं, वे मेरा स्वभाव नहीं; वे मेरे पुरुषार्थकी मंदताके कारण होते हैं। परंतु पुरुषार्थ तीव्र हो तो विभावपर्याय छूट जाती है और स्वभावपर्याय प्रगट होती है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०८)



## आगामी प्रकाशन

पण्डित श्री दिपचंदजी कासलीवाल द्वारा लिखित आध्यात्मिक ग्रन्थ 'आत्मावलोकन' एवं 'चिद्विलास' पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए भाववाहि अर्थगंभीर प्रवचनोंकी पुस्तकें सन् २०१८में प्रकाशित करनेकी भावना है। इसमें 'आत्मावलोकन' ग्रन्थ पर हुए प्रवचनोंके पाँच भाग होनेकी धारणा है एवं 'चिद्विलास' ग्रन्थ पर हुए प्रवचनोंके दो भाग बननेकी संभावना है।

**श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा व्यक्त हुए पत्र का विवेचन**

उल्लेख किया है कि आत्मामें अपूर्व शांति और वीतरागदशारूप समाधि अचलतासे रहती है। एक तरफ शारीरिक स्वास्थ्य निर्बल होता जाता है, तो दूसरी तरफ उनका आत्मिक स्वास्थ्य बलवान होता जाता है। ऐसा यहाँ पर स्पष्ट होता है। उनका आराधकभावमें सुदृढ़ पुरुषार्थ चल रहा है।



१५१

राजकोट, फागुन वदी ३, शुक्र, १९५७

‘अति त्वरासे प्रवास पूरा करना था। वहाँ बीचमें सहाराका रेगिस्तान सम्प्राप्त हुआ।

सिरपर बहुत बोझ रहा था उसे आत्मवीर्यसे जिस तरह अल्पकालमें वेदन कर लिया जाये उस तरह योजना करते हुए पैरोंने निकाचित उदयमान थकान ग्रहण की। जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता, यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है। शरीर-स्थिति उदयानुसार मुख्यतः कुछ असाताका वेदन कर साताके प्रति।’

परमकृपालुदेवकी सम्यक्पुरुषार्थ सहित प्रथमसे ही ऐसी भावना थी कि परिभ्रमणका प्रवास त्वरासे (इसी भवमें) पूरा करना, और तदनुसार उन्होंने पुरुषार्थ उठाया था, वहाँ बीचमें शरीर रोगरूप सहाराका रेगिस्तान सम्प्राप्त हुआ।

पूर्व संचित कर्मका बोझ कर्जरूप अपने सिरपर बहुत था, उसे आत्मिक पुरुषार्थसे जिस तरह अल्पकालमें वेदन कर लिया जाये, ऐसे अप्रतिहत पुरुषार्थकी योजना भी की, और जैसे ही स्वरूपमें पुरुषार्थकी दौड़ लगायी कि पैरोंने (शरीरधर्मने) निकाचित यानी कि जिसमें कोई फेरफार नहीं हो सके, ऐसी उदयमान विघ्नरूप थकान ग्रहण की। वर्तमान पंचमकालमें पुरुषार्थकी पूर्णता प्रगट करके परमात्मपदकी प्राप्ति और निर्वाणपद प्राप्त हो, ऐसी योग्यतावाले आत्मा इस क्षेत्रमें, इस कालमें जन्म नहीं लेते। (इस कालमें निर्वाणपदको प्राप्त करनेवाले महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेते हैं) ऐसा वस्तुस्वरूप है-जो केवलज्ञान द्वारा परमागमोंमें प्रसिद्ध हुआ है। उसमें कुछ अन्यथा नहीं होता, ऐसा जो केवलज्ञानका आश्चर्यकारी स्वरूप, उसकी प्रतीति हुई है, और आत्मामें तो शरीररोगसे बाधा न हो, ऐसी अव्याबाध स्थिरता रहती है।

उन्होंने पूर्णताकी प्राप्ति हेतु उग्र पुरुषार्थ उठाया था, फिर भी एक भव बाकी रहे, ऐसी स्थिति अंतमें रह गई। यही नियतिका अद्भुत आश्चर्य है। साथ ही साथ सम्यक् समाधानपूर्वक परिणमनमें अव्याबाध स्थिरता है।

शरीर प्रकृतिके उदय अनुसार असाताका वेदन होता है, तथापि उन्होंने शांतभावसे वेदन किया है। असाताका वेदन गौण रहा है। जिससे भावि असाताके बंधका निमित्त नहीं हुई, परन्तु पूर्व असाताकर्मकी निर्जरा हुई है। जिसके कारण भविष्यमें अनंत-अनंत समाधिसुखकी, अनंत दर्शन और अनंत ज्ञान सहित, स्थितिको प्राप्त होंगे।

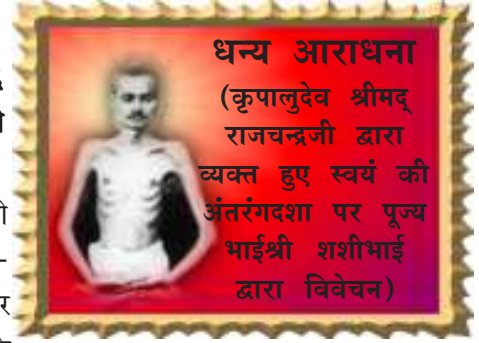
**सत्पुरुषोंको सनातन सन्मार्ग जयवंत वर्तों!!**

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जनवरी-२०१८) का शुल्क मनिषाबहेन हेमंतभाई शाह, मुम्बई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

१०१

बंबई, कार्तिक सुदी १५, १९५६  
‘है आर्य मुनिवरों! इसी असंग शुद्ध-चैतन्यके लिये  
असंगयोगकी हम अहर्निश इच्छा करते हैं।’

उनकी २९-३० सालकी युवा अवस्था होते ही निर्ग्रथदशाकी तीव्र भावना होनेका स्पष्ट निर्देश उनकी लेखनीसे और ‘अपूर्व-अवसर’ काव्य परसे स्पष्ट समझमें आता है। उस भावना अनुसार सहजरूपसे सम्यक् पुरुषार्थ भी वृद्धिगत हुआ है; और उसीके अनुसंधानमें असंग शुद्ध चैतन्यमें लीन रहनेके लिये असंगयोगको यानी कि बाह्याभ्यंतर निर्ग्रथताको रात्रि-दिन चाहते हैं। इतना ही नहीं जो महात्माएँ निर्ग्रथदशामें रहकर असंग चैतन्यमें लीन हुए, होते हैं और होंगे उन सर्वको भक्तिपूर्वक नमस्कार किये हैं।



धन्य आराधना

(कृपालुदेव श्रीमद्

राजचन्द्रजी द्वारा

व्यक्त हुए स्वयं की

अंतरंगदशा पर पूज्य

भाईश्री शशीभाई

द्वारा विवेचन)



११२

धर्मपुर, चैत्र वदी १, रवि, १९५६

‘बाह्य और अंतर समाधियोग रहता है।’

इन दिनों परमकृपालुदेव निवृत्तिक्षेत्रमें अंतर-बाह्य ज्ञान-ध्यानकी प्रवृत्ति हेतु रहे हैं। विशेष साधनामें रहते हुए अंतर-बाह्य समाधियोगमें रहे हैं-ऐसा उक्त वचनामृतमें उल्लेख हुआ है। नमस्कार हो! उनकी वीतरागी आराधनाको।



११७

अहमदाबाद, भीमनाथ, वैशाख सुदी ६, १९५६

‘एक श्लोक पढ़ते हुए हमें हजारों शास्त्रोंका भान होकर उसमें उपयोग घूम जाता है  
(अर्थात् रहस्य समझमें आ जाता है।)’

उक्त वचनामृतमें कृपालुदेवके सातिशय श्रुतज्ञानका दर्शन होता है। शास्त्रका कोई एक श्लोकको पढ़ते हुए उनका हजारों शास्त्रोंमें तत्संबंधित श्रुतज्ञानके भानसहित उपयोग घूम जाता है। -यह प्रकार उनकी अलौकिक श्रुतकी लब्धिको प्रकाशित करता है। आत्मस्वरूपमें विशेष लीनताका जिस धर्मात्माको अभ्यास रहता हो, उन्हें श्रुतज्ञानकी विशेष निर्मलताके उपरांत, अलौकिक लब्धि प्राप्त होती है। श्रुतलब्धिधारी साधकसंतोंको अत्यंत भक्तिसे त्रियोगसे नमस्कार हो!



१३३

ववाणिया, जयेष्ठ वदी, १९५६

‘अपूर्व शांति और समाधि अचलतासे रहती है।’

इस संक्षिप्त पत्रमें भी शारीरिक स्वास्थ्यकी मुख्यरूपसे असाता रहती होने पर भी, स्वयंकी अध्यात्मदशाका  
(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)